मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 4, अंक 71, अक्टूबर(द्वितीय), 2019

अमर और अमिट गांधी

राजेन्द्र वर्मा

हम जब गांधी की बात करते हैं, तो किसी हाड़-मांस के पुतले की नहीं, बल्कि उस विचार की बात करते हैं जिसके मूल में मानवता से प्रेम है जो धर्म-जाति, देश आदि बंधनों से परे है। इस प्रेम में स्वार्थ के लिए लेश मात्र स्थान नहीं है। निस्स्वार्थ प्रेम की साधना गांधीजी ने कतिपय मूल्यों के साथ कठोरता से की। ये मूल्य हैं : सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, अपने दुर्गुण के स्वीकार का साहस और शत्रु को भी क्षमा कर उस पर विश्वास करने का साहस। इन मूल्यों के सूत्र वे भारतीय सभ्यता से जोड़ते हैं और वे यह मानते हैं कि इन सूत्रों के बिखरने से ही देश ग़ुलाम हुआ- पहले मुग़लों का और बाद में अंग्रेज़ों का। वे ग़ुलामी के कारणों की तलाश करते हैं और आज़ादी का एक ही मन्त्र देते हैं कि हम स्वयं को ग़ुलाम न मानें और शासकों की उपेक्षा कर उनका असहयोग करें। वे शासकों (अंग्रेज़ों) को अपने दुश्मन नहीं मानते; वे उनकी संस्कृति को नापसंद करते हैं और कहते हैं कि अगर वे (अंग्रेज़) अगर हिन्दुस्तानी संस्कृति के साथ रहें, तो उनका स्वागत है। केवल सत्ता प्राप्त कर लेना उनका उद्देश्य नहीं था, बल्कि देश का हर आदमी अपने को आज़ाद माने। जब हर कोई आज़ाद होगा, तो देश अपने आप आज़ाद हो जायेगा। इससे सम्बंधित विस्तृत विचार उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में प्रकट किये, जो उन्होंने १९०९ में लिखी थी। कहना न होगा कि तब तक उन्होंने साउथ अफ़्रीका में अपने सत्याग्रह और अहिंसक आन्दोलनों के द्वारा कई अहम् मसलों को हल किया था और उन्हें इंग्लैंड में भारत की आज़ादी के सम्बन्ध में बातचीत के लिए बुलाया गया था।

गांधी-दर्शन के दो प्रमुख तत्त्व : अहिंसा और सत्याग्रह

यों गांधी-दर्शन में अनेक मानवीय मूल्यों का समावेश है, लेकिन उसके दो प्रमुख तत्त्व हैं : अहिंसा और सत्याग्रह। पहले **अहिंसा** की बात करते हैं। सामान्य बुद्धि के लोगों को लगता है कि अहिंसा का पक्ष वही लेता है जो दुर्बल है और अपनी शक्ति के साथ दुश्मन से नहीं निपट सकता; जबकि यह आत्मबल से सम्बंधित विचार है। हिंसा के बदले हिंसा करना तो बहुत आसान-सा सिद्धांत है, पर हिंसा के बदले अहिंसा का पालन बहुत कलेजे की बात है। हिंसा के ख़िलाफ़ अहिंसा के साथ खड़े रहने वाला आदमी कायर नहीं, अदम्य साहस की बात है, वीरता की बात है। कायर तो वह है जो हिंसा से डरकर कहीं छिप जाता है और अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा को बढ़ावा देता है। हिंसा का अंतिम लक्ष्य किसी की जान लेना है, पर जो वीर है, वह जान देने से नहीं डरता। सामान्यतः पौराणिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों में वीर वह है जो प्रतिपक्षी का न केवल डटकर मुक़ाबला करे, बल्कि उसकी जान भी ले ले। अर्थात् हिंसा के बदले हिंसा कर दुश्मन पर जीत हासिल करे। लेकिन हिंसा का यह सिलसिला कभी ख़त्म नहीं होता। युद्ध में जीत का उन्माद एक-दूसरे को हिंसक ही बनाये रखता है।

अहिंसा का पालन करने वाला हिंसा का मुक़ाबला करता है, लेकिन वह प्रतिपक्षी पर हमला, यानी हिंसा, नहीं करता। वह उसे दुश्मन नहीं समझता, क्योंकि उसका कोई दुश्मन होता ही नहीं। वह बंधुत्व में विश्वास रखता है। वह दुश्मन को भी अपना मानने की कूवत रखता है। एक डरा हुआ व्यक्ति हिंसक हो उठता है, लेकिन अहिंसक वही हो सकता है जो निडर हो और दुश्मन को अपना मानकर क्षमा करने को तत्पर हो। ऐसा आचरण कोई महामानव ही हो सकता है, जैसे ईसा मसीह और गांधीजी। ईसा मसीह ने अपने दुश्मनों को यही कहकर क्षमा किया था कि हे प्रभु! तू उन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। गांधीजी ने अहिंसा का पालन यह सोचकर किया कि तथाकथित दुश्मन के मन से हिंसा का भाव मिटाना है। उसे यही सीख देनी है कि वह जो (हिंसा) कर रहा है, वह ग़लत कर रहा है।

सत्याग्रह, जैसा कि स्पष्ट है कि यह दो शब्दों से बना है : सत्य और आग्रह, अर्थात् सत्य का आग्रह। यहाँ भी आत्मबल का कार्य है— सरकार द्वारा थोपी गयी किसी अनैतिक, भेदभावपूर्ण या किसी औचित्यहीन बात को न मानना, यानी सत्य का

आग्रह करना, झूठ को न मानना। गांधीजी कहते हैं : *सत्याग्रह या आत्मबलों को अंग्रेजी में 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहा जाता है। जिन लोगों ने अपने अधिकार पाने के लिए खुद दुख सहन किया था, उनके दुख सहने के ढंग के लिए यह शब्द बरता गया है। उसका ध्येय लड़ाई के ध्येय से उल्टा है। जब मुझे कोई काम पसंद न आये और वह काम मैं न करूँ, तो उसमें मैं 'सत्याग्रह' या आत्मबल का उपयोग करता हूँ। मिसाल के तौर पर, मुझ पर लागू होने वाला कोई कानून सरकार ने पास किया। वह क़ानून मुझे पसंद नहीं है। अब अगर मैं सरकार पर हमला करके यह कानून रद्द करवाता हूँ, तो यह कहा जाएगा कि मैंने शरीर-बल का उपयोग किया। अगर मैं उस कानून को मंजूर ही न करूँ और उस कारण से होने वाली सज़ा भुगत लूँ, तो कहा जाएगा कि मैं आत्मबल या सत्याग्रह से काम लिया। सत्याग्रह में मैं अपना ही बलिदान देता हूँ।*

सत्याग्रह के पक्ष में गांधीजी तुलसी का दोहा उद्धृत करते हैं :

दया धर्म को मूल है, पापमूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िए, जब लग घट में प्रान॥

वे कहते हैं— *मुझे तो यह वाक्य शास्त्र-वचन जैसा लगता है। जैसे दो और दो चार ही होते हैं, उतना ही भरोसा मुझे ऊपर के वचन पर है। दयाबल आत्मबल है, सत्याग्रह है और इस बल के प्रमाण पग-पग पर दिखाई देते हैं। अगर यह बल नहीं होता तो पृथ्वी रसातल में पहुँच गयी होती।*

आगे वे कहते हैं कि सत्याग्रह सबसे बड़ा बल है। यह तोप बल से ज्यादा काम करता है। सत्याग्रह के लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिए, वह तोप का बल रखनेवाले के पास हो ही नहीं सकती। सत्याग्रही कहेगा कि जो क़ानून उसे पसंद नहीं है, उसे वह स्वीकार नहीं करेगा, फिर चाहे उसे तोप के मुँह पर बांधकर उसकी धज्जियाँ क्यों न उड़ा दी जाएँ!

इस प्रकार सत्याग्रही वही हो सकता है जो निडर और अहिंसक हो। आजादी के बाद क्या देश, क्या विदेशों में- सभी जगह सत्याग्रह आन्दोलनों के माध्यम से ही समस्याओं का हल निकला है और आज भी इससे बड़ा और कोई आन्दोलन नहीं है। यह गांधीजी की दुनिया को दिया गया ऐसा हथियार है जो व्यर्थ नहीं जाता, समय भले ही अधिक लगे।

हिन्द स्वराज के आईने में आज़ादी का अर्थ

'हिन्द स्वराज' गांधीजी की वह पुस्तक है जो देश की आज़ादी का ब्लूप्रिंट है। इसमें हिन्दुस्तान की प्राचीन सभ्यता और अंग्रेज़ी सभ्यता का तुलनात्मक वर्णन है। देश कैसे अंग्रेजों का ग़ुलाम बना और वह उनके चंगुल से कैसे आज़ाद हो, इन तमाम बातों पर विस्तार से चर्चा है। हिन्दुस्तान की दशा, भाषा का प्रश्न, हिन्दू-मुसलमान की समस्या, गोरक्षा की प्रश्न आदि पर भी महत्त्वपूर्ण दृष्टि डाली गयी है। मशीनें देश के किसान और मजदूरों के लिए कितनी काम की हैं और उनसे कितना नुक़सान हो रहा है, इस पर भी चर्चा है। वकील और डॉक्टर अंग्रेज़ी सभ्यता की उपज हैं और वे कैसे हमारी प्राचीन सभ्यता को नष्ट कर रहे हैं और देश को ग़ुलाम बनाये रखने में सहायक हैं— इस पर तो आँख खोलने वाली चर्चा है। स्वराज-प्राप्ति के साधन क्या हों और सच्चा स्वराज कैसा हो, इन बातों को पूरी तरह समझे बिना ही न केवल आज़ादी की लड़ाई लड़ी गयी, बल्कि आज़ादी प्राप्त कर ली गयी। यही कारण है कि देश आज़ाद नहीं हुआ, केवल सत्ता का हस्तांतरण हुआ, जो गांधीजी का लक्ष्य नहीं था। देश अंग्रेजों के हाथों में कैसे गया? इस पर उनका कहना था : *हिन्दुस्तान अंग्रेजों ने लिया, सो बात नहीं है, बल्कि हमने उन्हें दिया है। हिन्दुस्तान में वे अपने बल से नहीं टिके हैं, बल्कि हमने उन्हें टिका रखा है। वह कैसे सो देखें। आपको मैं याद दिलाता हूँ कि हमारे देश में वे दरअसल व्यापार के लिए आये थे। आप अपनी कंपनी बहादुर को याद कीजिए। उसे बहादुर किसने बनाया? वे तो राज करने का इरादा भी नहीं रखते थे। कंपनी के लोगों की मदद किसने की? उनकी चांदी को देखकर कौन मोह में पड़ जाता था? उनका माल कौन बेचता था? इतिहास सबूत देता है कि यह सब हम ही करते थे।... आप अगर हिन्दुस्तान के रोग के डॉक्टर होना चाहते हैं, तो आपको रोग की जड़ खोजनी ही पड़ेगी।* गांधीजी का सपना देश के लोगों को जगाना था, आत्मनिर्भर बनाना था। आपसी सहयोग से सामजिक और आर्थिक व्यवस्था चलवाना था, लेकिन कुछ लोगों को अंग्रेज़ों को ज़ोर-ज़बरदस्ती भागकर सत्ता अपने हाथ में लेने की जल्दी थी, भले-ही शोषण की चक्की, महाजनी सभ्यता और अंग्रेज़ी शासन के तौर-तरीक़े बने रहे।

आज़ादी की लड़ाई की सरसरी जानकारी रखने वाला भी यह जानता है कि आज़ादी का आन्दोलन नर्म दल और गर्म दल में बँट गया था और अंतत गर्म दल वालों की रणनीति ही काम आयी और गांधीजी के स्वराज का सपना धूल-धूसरित हो गया। परिणाम यह कि देश अभी भी अंग्रेज़ी सभ्यता और राज-काज के तरीक़ों का ग़ुलाम है, भले ही देश में लोकतंत्र लागू है और चुने हुए शासक है। पहले लोगों को मारपीट कर गुलाम बनाया जाता था, आज लोगों को पैसे का और भोग का लालच देकर गुलाम बनाया जाता है। क्या यह सभ्यता की निशानी है? शरीर का सुख कैसे मिले, यही आज की सभ्यता ढूँढ़ती है और यही वह देने की कोशिश करती है, पर वह भी नहीं दे पाती। बड़ी-बड़ी मिलों और कारखानों के आगे कुटीर उद्योगों का कब का अंत हो चुका है। खेत-खेत में ट्रैक्टर हैं, सो गोरक्षा के प्रश्न के साथ-साथ गोवंश की हत्या एक नयी समस्या पैदा हो गयी है। आदमी श्रमशील न होकर बीमार हो गया है और अंग्रेज़ी दवाओं के सहारे जीवन चला रहा है। शिक्षा, चिकित्सा, पुलिस और न्यायालय— सब अंग्रज़ों का ही है। अंग्रेज़ी शिक्षा के चलते अमीर-ग़रीब की खाई बढ़ती जा रही है, बच्चे पढ़-लिखकर डॉक्टर और वकील बनकर अपने ही भाइयों का गला काट रहे हैं। सभ्यता के संकट को जब तक दूर नहीं किया जाता, तब तक आज़ादी का कोई मतलब नहीं।

मॉडरेट (नरम दल) और एक्सट्रीमिस्ट (गरम दल) और आज़ादी का समय

देश की आज़ादी का श्रेय भले-ही गांधीजी की अहिंसावादी नीति को है, लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि आज़ादी मिलने के समय गरम दल के लोगों का वर्चस्व हो चुका था और नरम दल के लोग उनके हाथों ही खेल रहे थे। यों गांधीजी का स्पष्ट माना था कि स्वराज गर्म दल की कोशिशों से मिलने वाला नहीं है। उनका कहना था कि स्वराज तो सबके अपने लिए पाना चाहिए—और सबको उसे अपना बनाना चाहिए। दूसरे लोग जो स्वराज्य दिला दें, वह स्वराज्य नहीं हैं, बल्कि पराजय है। इसलिए सिर्फ अंग्रेजों को बाहर निकाला कि आपने स्वराज पा लिया, ऐसा नहीं है। सच्चा स्वराज्य आप गोला-बारूद से नहीं पा सकते। गोला-बारूद हिन्दुस्तान को सधेगा नहीं। इसलिए सत्याग्रह पर ही भरोसा रखना पड़ेगा।... लेकिन जलियावाला काण्ड से लेकर करो या मरो आन्दोलन तक नर्म दल और गर्म दल एक होकर आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे थे और यही कारण है कि आज़ादी मिलते-मिलते देश पूरी तरह बँट चुका था। जलियावाला काण्ड एक हिसाब से गरमदल वालों की वज़ह से हुआ। यों, गवर्नर ओ. डायर और जनरल डायर, दोनों ही क्रूर अँगरेज़ थे, लेकिन इस काण्ड से पहले आज़ादी के दीवानों ने गांधीजी के अहिंसक और सत्याग्रह आन्दोलन के विपरीत, अंग्रेजों के से अभद्रता और मारपीट करने लगे थे। वे अँगरेज़ महिलाओं और बच्चों को भी नहीं छोड़ते थे। इस कारण अंग्रेजों में बहुत आक्रोश था और जलियावाला बाग़ की घटना के मूल में अंग्रेजों का यही आक्रोश था। गरमदल वाले आज़ादी को अंग्रेजों को मारकर लेना चाहते थे, जो गांधीजी को कटाई पसंद नहीं था। गांधीजी ने अपने हिन्द स्वराज और अन्य लेखों-भाषणों में वर्ष 1909 में मदनलाल धींगरा द्वारा इंग्लैण्ड में कर्नल वायली की हत्या का विरोध ही किया था और ऐसे मार्ग न चुनने का अनुरोध भी, पर उनकी नहीं चली।

अंग्रेजों की सत्ता के प्रतीक शिक्षालय, अंग्रेज़ी चिकित्सालय, पुलिस-न्यायालय, रेल, मिल-कारखाने पूरी तरह से भारतीय हो चुके थे, अतः अब गांधीजी के सभ्यता वाले प्रश्न को सोचने-विचारने का समय न था। जो अंग्रेज़ी सभ्यता थी, वही भारतीय सभ्यता थी। हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा चरम पर था। और तो और, देश के तमाम मुद्दों पर गांधीजी पूरी तरह से अप्रासंगिक हो चले थे। देश की आज़ादी के बड़े-बड़े नेता अंग्रेजों से अपेक्षाएं रखने लगे थे।....जिन्ना चाहते थे कि अंग्रेजों के सामने ही उन्हें उनका पाकिस्तान मिल जाए, भले-ही गांधीजी विभाजन टालने की कितनी-ही कोशिश कर लें। आम्बेडकर चाहते थे कि अँगरेज़ जाने से पहले भारतीय समाज में दलितों की स्थिति की गारेंटी कर दें, भले-ही गांधीजी कहते रहें कि हम खुद ही यह सब कर लेंगे। यह अप्रत्याशित न था, क्योंकि भारतीय वर्ण-व्यवस्था में दलितों का स्थान शुरू से ही शोचनीय था और गांधीजी स्वयं वर्ण-व्यवस्था में विश्वास रखते थे। इसलिए आम्बेडकर को गांधीजी से पूर्ण न्याय की उम्मीद न थी।

इनके अलावा, एक साज़िश के तहत गांधी पर लगातार जानलेवा हमले हो रहे थे। सावरकर कुनबा चाहता था कि अंग्रेजों के जाने से पहले गांधी का काम तमाम हो जाना चाहिए ताकि देश का जब बँटवारा हो तो हिन्दू राष्ट्र बनने में गांधी रोड़ा न बनने पाएँ !

लेकिन अँगरेज़ चले गये। देश आज़ाद तो था, लेकिन वैसी आज़ादी की कल्पना किसी ने न की थी। अब उसे भोगने और सत्ता-सुख लूटने की बात थी। गांधी तो महात्मा थे, उन्हें सत्ता से क्या लेना था। वे तो बस यही चाहते थे कि देश का बँटवारा न होने

पाए ! पर देश को तो बँटना ही था। कितना दुर्भाग्यपूर्ण था कि गांधीजी के पीठ पीछे उनके चहेते नेहरू और पटेल ने अंग्रेज़ों के आज़ादी इसी शर्त पर हथिया ली थी।

गांधी के छद्म उत्तराधिकारी

आज़ाद भारत के कर्णधारों ने गांधी के मरते ही, उनके सपनों को मार दिया। केवल दिखाने-भर को उन्हें राष्ट्रपिता का दर्ज़ा दे दिया। सरकारी दफ्तरों में उनकी फोटो टाँग दी और रुपये पर फोटो छापकर स्वयं गांधीवादी होने का श्रेय लूटने लगे। जिस कांग्रेस को गांधीजी ने आज़ादी मिलने के बाद ख़त्म करने की बात की, उसी कांग्रेस को चुनाओं में भुना-भुनाकर नेहरू और उनके परिवार के लोग दशकों तक देश पर राज करते रहे। जिस नौकरशाही, पुलिस और न्यायतंत्र में गांधीजी को विश्वास नहीं था, उसी को ज्यों-का-त्यों अख्तियार कर लिया गया। हिंसा पर आधारित भारतीय दंड संहिता जो अंग्रेजों ने बनायी थी और उसके प्रावधानों को लागू करने के लिए सी-आर.पी.सी.(आपराधिक प्रक्रिया विधान) जैसे कानूनों को भारतीय संविधान का अंग बना लिया गया। देखते-ही-देखते सत्ता पूंजीपतियों के हाथ में चली गयी। वही वाली कहावत है- आसमान से गिरे, खजूर में अटके। अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में गांधीजी जिस सभ्यता और स्वराज के स्वरूप की चर्चा किया करते थे, सब मिट्टी में मिल गया। कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के बजाय बड़ी-बड़ी मिलों की स्थापना कर दी गयी। भाषा, शिक्षा-चिकित्सा आदि के क्षेत्र में अपनी जड़ों की ओर लौटने की बजाय अंग्रेजों की सभ्यता को दिलोजान से अपनाने की होड़ लग गयी। सुना जाता है कि नेहरू अपने ऊनी कपड़े पेरिस से धुलवाते थे। गांधीजी ने देश घूमा था, जन-जन से मिले थे, उनकी आत्मा और भारत की आत्मा एकमेक थी, लेकिन उन्हें उत्तराधिकारी सत्ता के नशे में चूर अंग्रेज़ों की तरह व्यवहार करने लगे, जो आज भी बरक़रार है। पश्चिम देश हमारे रोल-मॉडल बन गये। हिंसा-आधारित सत्ता-शासन के लिए जो चीजें ज़रूरी होती है- हथियार, परमाणु बम आदि, उनमें देश की जी.डी.पी. स्वाहा होने लगी। यही कारण है कि आज आज़ादी के सत्तर सालों बाद देश की अधिकांश जनता बुनियादी ज़रूरतों की ओर ताक रहा है। अमीरी-गरीबी की खाई दिनोदिन बढती जा रही है। देश अमीर है, लेकिन यहाँ की जनता ग़रीब है। नेता जो लोकसेवक कहलाते हैं, वे जनता के मालिक हैं। जमींदारी और सामंती प्रथा ने अपना रूप और क्रूर कर लिया।

आज देश में उन्हीं छद्म राष्ट्रवादियों की सत्ता है जो गांधी के हत्यारे हैं और राजघाट पर फूल चढ़कर गांधी के सपनों को पूरा करने की क़समें खाते हैं। उनका बस चले तो वे भारतीय रुपये से गांधी की फोटो हटाकर सावरकर की लगा दें, पर बेचारे विवश हैं। उनके पुरखे गांधी को मारकर भी नहीं मार पाये। वे गांधी की विचारधारा को नहीं समाप्त कर पाये।

अमर और अमिट गांधी

गांधी अपने जीवनकाल में ही महात्मा कहलाते थे, क्योंकि उन्होंने सत्य को साधा था। गांधीजी जिस दिशा के प्रणेता था, उसे समझना हर किसी के बस का नहीं, विशेषतः जो हिंसा में विश्वास रखता हो। गांधीजी मरकर भी अमर हैं, अमिट हैं—उन्हें कोई नहीं मिटा सकता, क्योंकि जब भी प्रेम, बन्धुत्त्व, करुणा, क्षमा आदि उच्च मानवीय मूल्यों की बात होगी और सत्ता-शासन के सन्दर्भ में होगी, तो गांधी ही याद आयेंगे। लेकिन गांधी के सत्य और अहिंसा को समझाना कठिन है। जो लोग उनके साथ थे और स्वयं को उनका शिष्य मानते थे, वे भी उन्हें कभी नहीं समझ पाये। संकेत नेहरू और पटेल की ओर है जो गांधी के सत्य को कभी नहीं समझ पाये, क्योंकि सत्य निरपेक्ष होता है : वह न पक्ष में होता है और न ही विपक्ष में। इसलिए गांधी-मूल्यों को समझे बिना समाज का उत्थान नहीं किया जा सकता, शासकों में शुचिता नहीं आ सकती और न ही पूँजी का वर्चस्व नहीं समाप्त किया जा सकता। गांधी होना एक असाधारण घटना है और वह सैकड़ों-हज़ारों सालों में कहीं घटती है। अपने समय के वे विश्व-भर के प्रेरणास्रोत थे ही, आज भी हैं और आगे भी रहेंगे।

आइन्स्टीन का कथन स्मरण आ रहा है : हमारी आने वाली पीढियाँ शायद ही यक़ीन कर पाएँ कि कभी हाड-मांस का ऐसा इनसान इन धरती पर मौजूद था !